तमुल्लास
३
पर
ाधारित

ओ३म्

सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थमाला

शिक्षा और चरित्र निर्माण

सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी प्रकाशन

Scanned with CamScanner

प्राचार्य दत्तात्रेय वाब्ले द्वारा सम्पादित

सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थमाला

के 15 पुष्प और उनके लेखक

भाग	नाम	लेखक का नाम	मूल्य
1.	ईश्वर एक है नाम अनेक	प्रो. बुद्धि प्रकाश आर्य	1.50
2.	आदर्श माता-पिता	प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु	1.00
3.	शिक्षा और चरित्र निर्माण	प्रो. भूदेव शास्त्री	1.50
4.	गृहस्थाश्रम का महत्व	आचार्य ओंकार मिश्र प्रणव	1.00
5.	संन्यासी कौन और कैसे हो ?	रासासिंह विद्यावाचस्पति	1.00
6.	राज्य व्यवस्था	प्रो. प्रशान्त कुमार वेदालंकार	1.50
7.	ईश्वर और वेद	डॉ. सूर्यदेव शर्मा एम.ए., एल.टी. डी. लिट्.	1.50
8.	जगत् की उत्पत्ति	डॉ. स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	1.50
9.	स्वर्ग और नरक कहां है ?	सिद्धान्त भास्कर पं. यशपाल आर्य बन्धु	0.90
10.	चौके चूल्हे में धर्म नहीं है ?	प्रो. देव शर्मा वेदालंकार	0.90
11.	हिन्दू धर्म की निर्बलता	प्रो. भवानी लाल भारतीय	1.00
12.	बौद्ध और जैन मत	पं. मन्जुनाथ शास्त्री	0.90
13.	वेद और ईसाई मत	श्री रामस्वरुप जी रक्षक	0.90
14.	इस्लाम और वैदिक धर्म	डॉ. श्रीराम आर्य	1.00
15.	सत्य का अर्थ तथा प्रकाश	प्राचार्य दत्तात्रेय वाब्ले	1.50

विशेष—सभी ट्रैक्ट आर्य जगत् के चोटी के विद्वानों के द्वारा लिखित हैं। ग्रन्थमाला का सम्पादन आर्यसमाज अजमेर के प्रधान प्रो. दत्तात्रेय जी आर्य ने किया। ग्रन्थमाला के सैट का मूल्य 15/- रुपये है

Scanned with CamScanner



सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थमाला-भाग 3

शिक्षा और चरित्र निर्माण

श्री भूदेव शास्त्री

भूतपूर्व प्राध्यापक

जियालाल शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान, अजमेर

□

सम्पादक :

दत्तात्रेय वाब्ले

भू. पू. प्रिंसिपल, दयानन्द स्नातकोत्तर कॉलेज, अजमेर

□

प्रकाशक : **आर्य समाज, अजमेर**

शताब्दी वर्ष 1992 | प्रतियाँ 2000 | मूल्य 1.50 पैसे

Scanned with CamScanner

हमारा प्रिय सत्यार्थ प्रकाश

(1)

हमारे गुरु का आशीर्वाद, हमारे ऋषि का अमर विधान ।
मिटाकर जग का विषम विषाद, करेगा वही विश्व-कल्याण ।।
इष्ट फल देगा नित्य नवीन, कल्पपादप का पुण्याभास ।
करे वह असत्-विचार-विहीन, हमारा प्रिय सत्यार्थ प्रकाश ।।

(2)

निगम का आगम का अवतार, भव्य भावों का भूवि भण्डार ।
प्रेम के पथ का पारावार, ज्ञान का गुण का रम्यागार ।।
चमकते जिसमें रत्न अनेक, नित्य प्रति पाते विविध विकास ।
सत्य का सागर बस वह एक, हमारा प्रिय सत्यार्थ प्रकाश ।।

(3)

विविध पंथों का तामस तौम, भरा था भू पर भ्रम भरपूर ।
अखिल आच्छादित था वर व्योम, न कर सकता था कोई दूर ।।
गगन में हुआ ज्ञान विस्फोट, किया अज्ञान अँधेरा नाश ।
असत पर मारी भारी चोट, हमारा प्रिय सत्यार्थ प्रकाश ।।

(4)

किया द्रुत खण्ड-खण्ड पाखण्ड, चलाकर तेज तर्क का तीर ।
आक्रमण हुआ प्रभूत प्रचण्ड, दम्भगढ़ गिरा सहित प्राचीर ।।
विलखते हैं मतवादी आज, करें कैसे किसकी अब आश ?
असत् पर गिरा गर्ज कर गाज, हमारा प्रिय सत्यार्थ प्रकाश ।।

(5)

"सूर्य" में रहें रश्मियाँ सात, यहाँ चौदह पूरे उल्लास ।
"सूर्य" करता न प्रकाशित रात, सतत यह देता ज्ञान प्रकाश ।।
"सूर्य" पर छाते घन बरसात, ग्रहण में होता भारी ह्रास ।
किन्तु "सत्यार्थ" सदा अभिजात, हमारा प्रिय सत्यार्थ प्रकाश ।।

रचियता :
[**डॉ. सूर्यदेव शर्मा शास्त्री,** साहित्यालंकार एम. ए., डी, लिट् ,]
अजमेर

Scanned with CamScanner

प्रस्तावना

आधुनिक युग के महान् धार्मिक और सामाजिक क्रान्तिकारी चिन्तक महर्षि दयानन्द ने शिक्षा जैसे जीवन निर्माण के महत्वपूर्ण प्रश्न पर सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समुल्लास तथा व्यवहार-भानु आदि में जो विचार व्यक्त किये हैं, उनका अनुशीलन करने के पश्चात् यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि वे एक अत्यन्त दूरदर्शी शिक्षाविद और सुधारक थे। उनकी दृष्टि में शिक्षा केवल विषयों की जानकारी या जीविका प्राप्त करने का साधनमात्र न होकर उसका मुख्य उद्देश्य देश के बालक बालिकाओं में चरित्र का निर्माण और सर्वाङ्गीण विकास करना है। आर्य समाज के छठे नियम में उन्होंने--शारीरिक, आध्यात्मिक और सामाजिक--तीनों क्षेत्रों में समान उन्नति करने पर जोर देकर इसी सर्वांङ्गीण उन्नति की हमें कल्पना दी है।

अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि--को सातवें नियम का आधार बनाकर उन्होंने समुचित शिक्षा प्रसार को आर्य समाज के उद्देश्यों में भी सम्मिलित किया है। आर्य समाज द्वारा देश और विदेशों में स्थापित और संचालित हजारों डी. ए. वी. स्कूलों, कॉलेजों तथा गुरुकुलों का गत एक सौ वर्षों का योगदान शिक्षा के क्षेत्र में एक गौरवपूर्ण स्थान रखता है।

ऋषि दयानन्द का शिक्षा के क्षेत्र में इस व्यापक योगदान से भी अधिक महत्व का कार्य वह है जिसका हम ऊपर संकेत कर आये हैं। शिक्षा के महत्व और उद्देश्य के क्षेत्र में भी एक मौलिक दार्शनिक के रूप में उनका स्थान है। स्त्री और शूद्रों को अध्ययन का ही नहीं देववाणी संस्कृत और वेद तक पढ़ने का समान अधिकार है

Scanned with CamScanner

उनकी यह घोषणा अपने समय में एक क्रान्तिकारी कदम था, क्योंकि हिन्दुओं की तब तक यह धार्मिक मान्यता थी कि स्त्री और शूद्रों को पढ़ने पढ़ाने का अधिकार नहीं है। इसी प्रकार हमारे वर्तमान संविधान के नीति निर्देशक तत्वों में अनिवार्य शिक्षा का जो प्रावधान है, ऋषि दयानन्द ने एक सौ वर्ष पूर्व उसकी घोषणा की थी और कहा था कि जो माता पिता अपने बच्चों को शिक्षा से वंचित रखते हैं उन्हें राज्य द्वारा दण्डित किया जाना चाहिये। हमारे देश में प्रजातन्त्र के नाम पर जो भीड़ तन्त्र चल रहा है उसका भी एक कारण यही है कि हमने न तो मतदाताओं के लिये और न ही उम्मीदवारों के लिये और यहाँ तक कि मन्त्रियों तक के लिये शिक्षा की कोई शर्त रखी है। ऋषि दयानन्द प्रजातन्त्र की सफलता के लिये भी शिक्षा को अनिवार्य समझते थे। वे भारत के पहले आधुनिक विचारक थे जिन्होंने राष्ट्रीय कांग्रेस के जन्म से दस वर्ष पूर्व प्रजातन्त्र और स्वराज्य दोनों की स्पष्ट और निर्भीक घोषणा की थी। उनके प्रजातन्त्र में केवल संख्या का महत्व नहीं था। वे शिक्षा, योग्यता, चरित्र और निस्वार्थ सेवा भाव को भी आवश्यक शर्त मानते थे। इसी प्रकार उनके स्वराज्य का आधार केवल अपना राज्य न होकर-स्व-भी उतना ही आवश्यक था। अंग्रेजी आदि विदेशी भाषा और आधुनिक विज्ञान के अध्ययन के विरोधी न होते हुये भी उनका आग्रह था कि विदेशी शिक्षा-स्व-भाषा में ही अर्थात् हिन्दी, संस्कृत में ही सम्भव है।

उनकी गुरुकुल शिक्षा प्रणाली भी आधुनिक शिक्षा शास्त्रियों की इस मान्यता का परिष्कृत और व्यापक पूर्वरूप है कि विद्यार्थी, अध्यापक के सानिध्य में रहे। कुछ लोग इंग्लैण्ड की पब्लिक स्कूल प्रणाली की गुरुकुल से तुलना करते हैं हमारे देश में भी इस प्रकार के जो स्कूल स्थापित किये गये हैं उनका समर्थन करते हैं किन्तु इन स्कूलों में ऋषि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित गुरुकुल प्रणाली की

Scanned with CamScanner

तीनों विशेषताओं का सर्वथा अभाव है। अर्थात् ब्रह्मचर्य, सादगी और समानता। विद्यार्थी जीवन का ब्रह्मचर्य अनिवार्य आधार है। एक प्रकार से दोनों एक दूसरे के पर्यायवाची है। क्योंकि किशोर अवस्था के प्रारम्भ में ही विषय भोगों के विचारों से विकृत और त्रस्त मस्तिष्क में अध्ययन के लिये आवश्यक एकाग्रता टिक नहीं सकती। आज हमारे देश के वर्तमान विद्यार्थियों के मानस को कामुक चलचित्रों ने कितना विकृत कर दिया है यह बताने की आवश्यकता नहीं। हमारे युवक और युवतियों में बढ़ती हुई अनुशासन हीनता का भी यह एक कारण है। आत्म संयम के बिना केवल भय या दण्ड के द्वारा अनुशासन हीनता समाप्त नहीं की जा सकती। यह भी आज हमारे अनुभव से स्पष्ट है। इसी प्रकार सादा जीवन और उच्च विचार गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की दूसरी विशेषता थी। उसमें रहन सहन, भोजन, शयन आदि सबमें तपस्वी जीवन आवश्यक समझा जाता था जिसका पब्लिक स्कूलों में सर्वथा अभाव है। गुरुकुल में ऊँच-नीच, ब्राह्मण-शूद्र यहाँ तक कि राजकुमार और एक गरीब मजदूर के पुत्र में भी कोई भेद भाव नहीं किया जाता था। वास्तविक समाजवाद की नींव डालने वाली यह समानता सब प्रकार की सामाजिक समानता की व्यवहारिक पाठशाला थी। इन विशेषताओं के अभाव में गुरु शिष्य की प्राचीन परम्परा बनाये रखना असम्भव है। आज आये दिन छात्रों द्वारा अध्यापकों पर आक्रमण तक करने की घटनायें इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का द्योतक है।

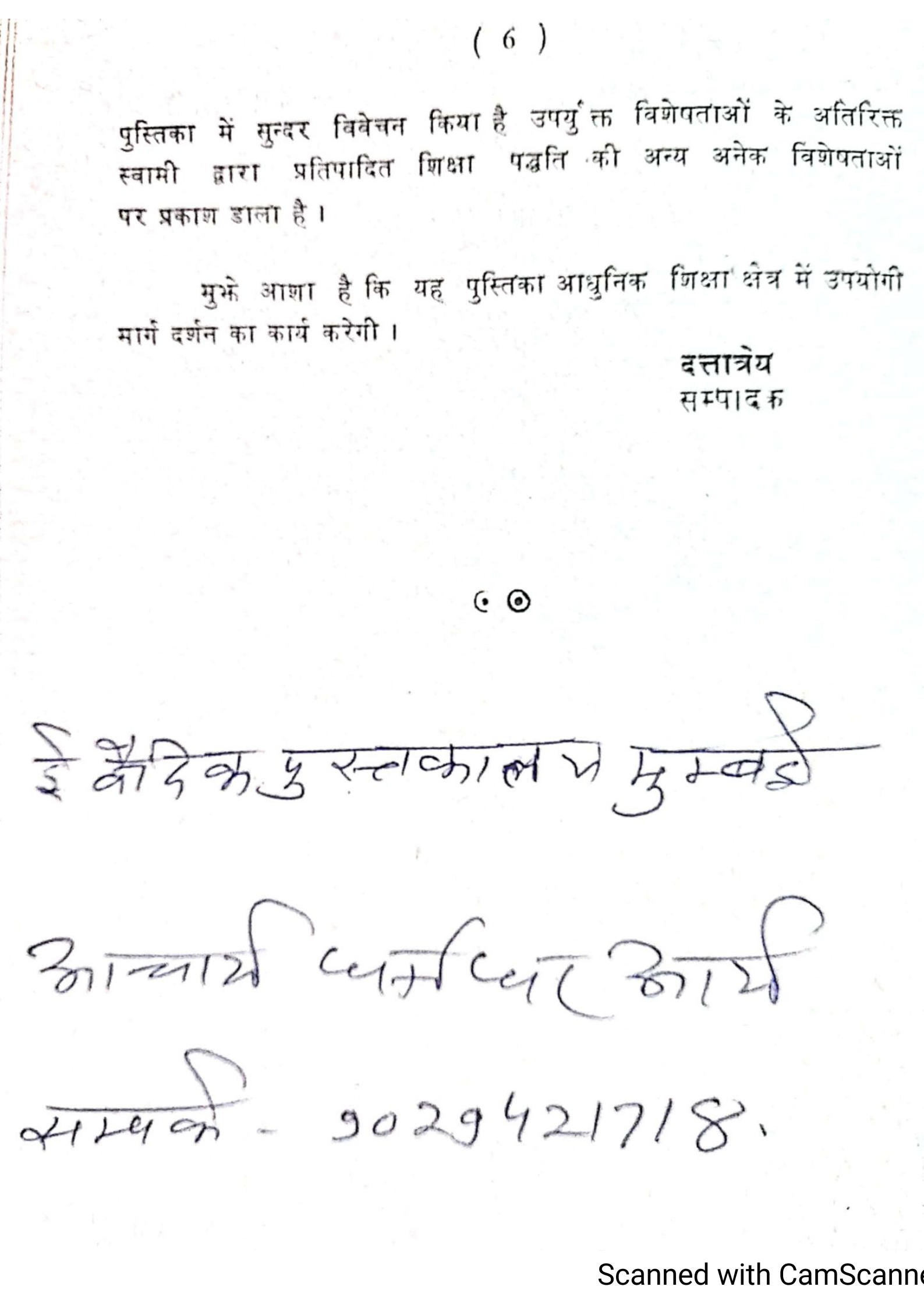
इस पुस्तिका के विद्वान लेखक स्वयं एक यशस्वी शिक्षा शास्त्री हैं। अजमेर के प्रसिद्ध दयानन्द कॉलेज से सम्बन्धित जियालाल शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान में वे वरिष्ठ प्राध्यापक के रूप में बी. एड. तथा एम. एड. तक के स्नातकों को अनेक वर्षों तक शिक्षा शास्त्र पढ़ाते रहे हैं। ऋषि दयानन्द के शिक्षा सम्बन्धी उपर्युक्त क्रान्तिकारी विचारों पर आधारित सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे सम्मुलास का लेखक ने इस

Scanned with CamScanner

पुस्तिका में सुन्दर विवेचन किया है उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त स्वामी द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धति की अन्य अनेक विशेषताओं पर प्रकाश डाला है।

मुझे आशा है कि यह पुस्तिका आधुनिक शिक्षा क्षेत्र में उपयोगी मार्ग दर्शन का कार्य करेगी।

दत्तात्रेय
सम्पादक



ई वैदिक पुस्तकालय मुम्बई

आचार्य धर्मवीर आर्य

सम्पर्क - 9029421718.

Scanned with CamScanner

।। ओ३म् ।।

शिक्षा और चरित्र निर्माण

महर्षि दयानन्द सरस्वती एक युगान्तरकारी महापुरुष थे। वे वेदों तथा वेदानुकूल ग्रन्थों में प्रतिपादित सिद्धान्तों के आधार पर मानव जाति का सर्वतोमुखी पुनर्निर्माण करना चाहते थे। सामाजिक स्तर पर ऐसा कोई पुनर्निर्माण शिक्षा-व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये बिना नहीं हो सकता। इसी दृष्टि से महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय एवं तृतीय समुल्लास लिखे थे।

अधुनिक शिक्षा-दार्शनिक मानते हैं कि व्यक्ति अपने पारिवारिक तथा सामाजिक परिवेशों के साथ निरन्तर चलने वाली अन्तरक्रिया से शिक्षित होता है। महर्षि मानते थे कि व्यक्ति वैसा ही बनेगा, जैसा उसे माता, पिता तथा आचार्य मिलकर बनाना चाहेंगे। इन दानों मान्यताओं में कोई विरोध नहीं है, क्योंकि माता-पिता पारिवारिक परिवेश के तथा आचार्य उसे शैक्षिक परिवेश के जिसमें बालक-बालिका को अपना सम्पूर्ण शिक्षा काल व्यतीत करना होता है, नियन्त्रक एवं प्रतिनिधि होते हैं। इनका प्रभाव और पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेशों का प्रभाव एक ही बात है। महर्षि ने द्वितीय समुल्लास में माता-पिता के (पारिवारिक) शैक्षिक उत्तरदायित्व का निरूपण करके तृतीय समुल्लास में आचार्य की देख-रेख में चलने वाले अर्थात् सामाजिक परिवेश में आयोजित शिक्षा कार्यक्रम की रूप रेखा प्रस्तुत की है।

तृतीय समुल्लास में मुख्यतया निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार किया गया है :—

1. शिक्षा के सामान्य उद्देश्य क्या हैं ?

Scanned with CamScanner

2. लिङ्ग भिन्नता का शिक्षा के उद्देश्यों पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
3. वर्ण व्यवस्था उन उद्देश्यों को किस रूप में प्रभावित करती है ?
4. उन उद्देश्यों को दृष्टि में रखते हुए शिक्षा का आरम्भ और समाप्ति किस-किस आयु पर होनी चाहिए ?
5. शिक्षणालय (गुरुकुल) में अपने पुत्र-पुत्रियों को भेजने से पूर्व अभिभावकों को तैयारी के रूप में क्या करना चाहिए ?
6. शिक्षणालय किस प्रकार के होने चाहिए ?

(क) ग्राम अथवा नगर से कितने दूर रहें ?
(ख) बालकों तथा बालिकाओं के शिक्षणालयों के बीच कितनी दूरी होनी चाहिए ?
(ग) दोनों प्रकार के शिक्षणालयों के लिए स्टाफ-व्यवस्था कैसी हो ?
(घ) आचार्यों - आचार्याओं तथा बालक - बालिकाओं का पारस्परिक सम्बन्ध कैसा होना चाहिए ?
(ङ) बालक-बालिकाओं के साथ उनके माता-पिताओं का सम्बन्ध कैसा रहना चाहिए ?
(च) प्रवेश के समय की औपचारिकताएँ ।
(छ) शिक्षणालयों में बालक-बालिकाओं द्वारा अवश्य पालनीय नियम क्या-क्या हों ?
(ज) बालक-बालिकाओं की देखभाल कैसे चले ?
(झ) शिक्षा अनिवार्य एवं सार्वभौम रहे अथवा ऐच्छिक एवं वर्गनिष्ठ ?

7. शिक्षणालयों में पाठ्यक्रम क्या हो ?

Scanned with CamScanner

8. पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने के लिए विषयवस्तु की जांच के लिए कसौटियाँ क्या हों ?
9. पाठन-विधि का स्वरूप क्या हो ?
10. शिक्षा के प्रति समाज एवं राज्य के उत्तरदायित्व का स्वरूप क्या हो ?

इन शैक्षिक प्रश्नों के साथ-साथ प्रासंगिक रूप में इस सम्मुल्लास में निम्नलिखित प्रश्नों की भी चर्चा हुई है :—

1. अग्निहोत्र करने से क्या-क्या लाभ होते हैं ?
2. प्रमाण कितने और कौन-कौन से हैं ?
3. वेदाध्ययन का अधिकार किन-किन को है ?
4. विद्याध्ययन में विघ्न कौन-कौन से हैं ?
5. किन-किन ग्रन्थों का अध्ययन नहीं करना चाहिए ?
6. षड्दर्शन किस प्रकार परस्पर अविरोधी हैं ?
7. चारों वर्णों के स्त्रियों और पुरुषों में विद्या और धर्म का प्रचार क्यों होना चाहिए ?

ये प्रश्न किसी न किसी रूप में शैक्षिक कार्यक्रम से सम्बद्ध हैं अतः उनका परिगणन कर दिया गया है। इस निबन्ध की अगली पंक्तियों में इन प्रश्नों के उत्तर रूप में महर्षि ने जो कुछ कहा है उसे समझने का प्रयत्न किया जायेगा।

प्रथम प्रश्न : शिक्षा के सामान्य उद्देश्य क्या हैं ?

महर्षि ने 'शिक्षा के उद्देश्य' यह शीर्षक देकर शिक्षा के उद्देश्यों का परिगणन नहीं किया है परन्तु इस समुल्लास के आरम्भ में ही बालक-बालिकाओं के व्यक्तित्वों में जिन जिन विशेषताओं के

Scanned with CamScanner

समावेश को उन्होंने आवश्यक माना है और पाठ्यक्रम का जो विवरण आगे चलकर दिया है, उसके आधार पर शिक्षा के निम्न-लिखित उद्देश्यों का निर्धारण किया जा सकता है :—

1. समस्त बालक-बालिकाओं को वेदों, उपवेदों, वेदांगों, उपाङ्गों उपनिषदों तथा ब्राह्मणों आदि आर्ष वैदिक साहित्य तथा वेदानुकूल लौकिक साहित्य का अध्ययन कराना।

2. समस्त बालक-बालिकाओं को उनके वर्ण-आश्रम तथा लिंग की दृष्टि से आवश्यक कर्त्तव्यों एवं आचारों को पूरा करने के लिए सन्नद्ध करने वाले ज्ञान क्षेत्रों तथा कौशलों का गम्भीर परिचय तथा क्रियात्मक अभ्यास प्रदान करना।

3. समस्त बालक-बालिकाओं को शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक उन्नति के लिए आवश्यक व्रतमय जीवन बिताने की प्रेरणा देते हुए उन्हें व्रतमय जीवन बिताने का अभ्यास कराना।

4. समस्त बालक बालिकाओं में वेदों, वैदिक साहित्य, वैदिक धर्म, वैदिक संस्कृति, परिवार, समाज देश तथा विश्व के प्रति कर्तव्य पालन में गहरी में रुचि उत्पन्न करना।

5. समस्त बालक-बालिकाओं में शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक उन्नति के विरोधी गुणों, कर्मों तथा स्वभावों के प्रति गहरी अरुचि उत्पन्न करना।

6. समस्त बालक-बालिकाओं में धार्मिक (धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, इन्द्रिय निग्रह, समझदारी, विद्या-प्रेम, सत्य, अक्रोध, अहिंसा, परोपकार, अनहंकार, शिष्टाचार, आदि) वृत्तियाँ उत्पन्न करना।

Scanned with CamScanner

द्वितीय प्रश्न : लिङ्ग भिन्नता का शिक्षा के उद्देश्यों पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

इस प्रश्न के उत्तर में महर्षि के निम्नलिखित वाक्य बहुत सावधानी से पढ़ने और समझने योग्य हैं—

"इसलिए ब्राह्मणी को सब विद्या, क्षत्रिया को सब विद्या और युद्ध तथा राजविद्या विशेष, वैश्या को व्यवहार विद्या और शूद्रों को पकादि सेवा की विद्या अवश्य पढ़नी चाहिये। जैसे पुरुषों को व्याकरण, धर्म और व्यवहार की विद्या न्यून से न्यून अवश्य सीखनी चाहिए, वैसे ही स्त्रियों को भी व्याकरण-धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्प विद्या तो अवश्य सीखनी चाहिए। क्योंकि इनके सीखे बिना सत्यासत्य का निर्णय, पति आदि के अनुकूल वर्तमान, यथायोग्य सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन, वर्धन और सुशिक्षा करना, घर के कार्यों को जैसा चाहिए, वैसा कराना, वैद्यक विद्या से ओषधवत् अन्नपान बना और बनवाना नहीं कर सकतीं जिससे घर में रोग कभी न आये और सब लोग सदा आनन्दित रहें। शिल्प विद्या के बिना घर का बनवाना, वस्त्र आभूषण आदि का बनना-बनवाना, गणित विद्या के बिना सब का हिसाब समझना-समझाना, वेदादि शास्त्र विद्या के बिना ईश्वर और धर्म को न जानके अधर्म से कभी न बच सकें।"

(रा, ला, क, ट्र, संस्करण, तृतीय समु. पृष्ठ 112 पक्ति 7-22)

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि महर्षि स्त्रियों के लिए शिक्षा के पुरुषों के उद्देश्यों से भिन्न सामान्य उद्देश्य नहीं मानते परन्तु वे यह अवश्य चाहते हैं कि स्त्रियों लिए के पाठ्यक्रम बनाते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि उनका पाठ्यक्रम ऐसा विशिष्ट रहे कि वे एक ओर अपने पतियों के साथ पूरा-पूरा सहयोग करती रह सकें

Scanned with CamScanner

तो दूसरी ओर सन्तानोत्पादन तथा गृह संचालन आदि अपने विशिष्ट कर्तव्यों का भी अच्छी तरह निर्वाह कर सकें। इस विषय का विस्तृत विवेचन 'पाठ्यक्रम' के प्रसंग में किया जाएगा।

तृतीय प्रश्न : वर्णव्यवस्था उन उद्देश्यों को किस रूप में प्रभावित करती है?

महर्षि जिस प्रकार स्त्रियों के लिए शिक्षा के भिन्न उद्देश्य नहीं मानते, उसी प्रकार विभिन्न वर्णों की सन्तानों के लिए भी शिक्षा के भिन्न उद्देश्य नहीं मानते। यह न मानना उचित भी है। कुछ ऐसी विद्या-सम्बन्धी तथा आचारिक विशेषताएँ हैं: जिनका प्रत्येक वर्ण के बालकों और बालिकाओं के व्यक्तित्वों में समाविष्ट होना आवश्यक होता है। उनके लिए वर्ण भेद के आधार पर शिक्षा के सामान्य उद्देश्य निर्धारित करना अनावश्यक है। जिन विद्या-सम्बन्धी तथा आचारिक विशेषताओं का सम्बन्ध वर्ण-विशेष के साथ रहता है, उनके आधान की बात ऊपर उद्देश्य सं. 2 के रूप में कही जा चुकी है। इस दृष्टि से भी शिक्षा के वर्ण भेद पर आधारित उद्देश्यों का पृथक् निर्धारण आवश्यक नहीं है। जिस स्तर पर किसी विशिष्ट वर्ण के लिए विशेष प्रकार की शिक्षा आवश्यक हो, उस स्तर पर पाठ्यक्रम के विभिन्नीकरण से काम चल सकता है और इस विभिन्नीकरण शिक्षा के उक्त उद्देश्य के अन्तर्गत होता रह सकता है।

चतुर्थ प्रश्न: उन उद्देश्यों को दृष्टि में रखते हुए शिक्षा का आरम्भ और समाप्ति किस-किस आयु पर होनी चाहिए?

इस विषय में महर्षि लिखते हैं, इसमें राजनियम और जाति नियम होना चाहिए कि पाँचवें तथा आठवें वर्ष से आगे अपने लड़कों

Scanned with CamScanner

और लड़कियों को घर में न रख सकें। पाठशाला में अवश्य भेज देवें। जो न भेजे वह दण्डनीय हो। (रा, ला, क, ट्र, संस्करण, तृतीय समुल्लास, पृष्ठ 58, पंक्ति 29) स्पष्ट है कि महर्षि मानते हैं कि शिक्षा का आरम्भ पाँचवें वर्ष में हो जाना चाहिए और यदि किसी कारण से विलम्ब करना पड़ जाए, तो इस विलम्ब की सीमा भी आठवें वर्ष से आगे नहीं ज़ानी चाहिए।

इस विषय में मनुस्मृति की व्यवस्था यह है :--

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ।। मनु-2।37 ।।

ब्रह्मवर्चस् की कामना करने वाले बालकों का पाँचवें वर्ष में, बल की कामना करने वाले बालक का छठे वर्ष में तथा अर्थ की कामना करने वाले बालकों का आठवें वर्ष में उपनयन (यज्ञोपवीत) करके विद्याध्ययन आरम्भ करा देना चाहिए। इस व्यवस्था में विभिन्न कामनाओं वाले बालकों के लिए उपनयन की विभिन्न आयुएँ प्रस्तावित हैं और बालिकाओं के लिए स्पष्टतया कुछ भी नहीं कहा गया है। महर्षि ने इस व्यवस्था में तीन सुधार किये हैं :- (1) कम से कम पाँचवें और अधिक से अधिक आठवें वर्ष में प्रत्येक बालक का उपनयन विद्यारम्भ हो जाना चाहिए। (2) यह नियम बालकों के साथ बालिकाओं पर भी लागू किया जाना चाहिए। (3) विद्यारम्भ काल में पिता के वर्ण को दृष्टि में रखकर नहीं अपितु शिक्षार्थी की तैयारी को दृष्टि में रखते हुए भेद किया जाना चाहिए। मानव मात्र की समानता में विश्वास करने वाले महापुरुष के लिए चली आती हुई व्यवस्था में ऐसा परिवतन करना आवश्यक था।

शिक्षारम्भ के काल के विषय में महर्षि का तिचार आधुनिक शैक्षिक विचारकों के विचारों से अधिक मिलता है। आज प्राथमिक

Scanned with CamScanner

शिक्षा का आरम्भ 6+ आयु से उचित माना जाता है। प्राथमिक शिक्षा से पहले अब शिशु-शिक्षा की व्यवस्था भी की जाने लगी है। यह शिक्षा 4+ आयु से आरम्भ होकर 6+ आयु तक चलती है। उसके बाद बच्चे (बालक और बालिकाएँ प्राथमिक) विद्यालय में चले जाते हैं। 4+ आयु का अर्थ आयु का पंचम वर्ष ही होता है। इस प्रकार शिक्षारम्भ की आयु के विषय में आधुनिक शैक्षिक चिन्तकों तथा महर्षि के विचारों में आश्चर्यजनक समानता है।

शिक्षा-काल की समाप्ति के विषय में महर्षि ने अनेक विचार प्रस्तुत किये हैं। इस विषय में मनुस्मृति का विधान यह है :—

षट्त्रिंशदाब्दिकंचर्यं गुरौ त्रैवैदिकं व्रतम्।
तदधिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा ।। मनु-3।1।।

छत्तीस वर्ष पर्यन्त, अठारह वर्ष पर्यन्त, नौ वर्ष पर्यन्त अथवा जितने वर्षों में पूरी विद्या का ग्रहण हो जाए, उतने वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन करते हुए गुरु के पास रहना चाहिए।

छान्दोग्य-उपनिषद् के अनुसार ब्रह्मचर्य तीन प्रकार का है :— कनिष्ठ—24वें वर्ष पर्यन्त मध्यम—44वें वर्ष पर्यन्त, उत्तम—48वें वर्ष पर्यन्त। इन तीनों प्रकारों को शिक्षा समाप्ति की तीन अवधियाँ माना जा सकता है।

महर्षि की दृष्टि में प्रत्येक व्यक्ति (पुरुष अथवा स्त्री) का शिक्षा काल पाँचवें से लेकर आठवें वर्ष तक से आरम्भ होकर उसकी रुचि एवं क्षमता के अनुसार चौबीसवें वर्ष से लेकर अड़तालीसवें वर्ष की समाप्ति अथवा सोलहवें वर्ष की समाप्ति से

Scanned with CamScanner

लेकर चौबीसवें वर्ष की समाप्ति तक चलना चाहिए। यह भी स्पष्ट है कि उनको बालकों और बालिकाओं के शिक्षा समाप्ति काल एक ही अभीष्ट नहीं है।

यदि राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की दृष्टि से जैसे सुविकसित व्यक्तित्व वाले युवकों और युवतियों की आश्यकता होता है, उसको ध्यान में रखकर सोचा जाए, तो महर्षि द्वारा स्वीकृत शिक्षावधि अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है।

पंचम प्रश्न : शिक्षणालयों में अपने पुत्रों और पुत्रियों को भेजने से पूर्व अभिभावकों को तैयारी के रूप में क्या करना चाहिए ?

इस विषय में महर्षि ने निम्नलिखत वाक्य लिखे हैं :

1. द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का यथा योग्य संस्कार करके यथोक्त आचार्य कुल अर्थात् अपनी-अपनी पाठशाला में भेज देवें
(तृतीय समुल्लास, पृष्ठ 58, पंक्ति 2-5)
2. प्रथम लड़कों का यज्ञोपवीत घर में हो और दूसरा पाठशाला आचार्य कुल में हो (तृतीय समु. पृष्ठ 59, पंक्ति 3-4)
3. पिता-माता व अध्यापक अपने लड़का-लड़कियों का अर्थ सहित गायत्री मन्त्र का उपदेश कर देवें
(तृतीय समुल्लास पृष्ठ 59 पंक्ति 4-5)
4. इस प्रकार गायत्री का उपदेश करके सन्ध्योपासन सिखलावें।
(तृतीय समुल्लास पृष्ठ 60, पंक्ति 27-28)
5. भोजन, छादन, बैठने, उठने, बोलने, चालने बड़े छोटों से यथायोग्य व्यवहार करने का उपदेश करें। (तृतीय समुल्लास, पृष्ठ 62, पंक्ति 24-25) कदाचित् महर्षि को अग्नि होत्र विधि का उपदेश भी अभीष्ट है।

Scanned with CamScanner

महर्षि को यह भी अभीष्ट था कि द्विज माता-पिता अपनी सन्तानों को गुरुकुल भेजने से पूर्व ही घर पर ही उनका उपनयन करके उन्हें गायत्री, सन्ध्या, अग्निहोत्र तथा शिष्टाचार सिखायें। उनको ऐसा अभीष्ट क्यों था, यह उन्होंने कहीं स्पष्ट नहीं किया है पर इन निर्देशों का औचित्य इस रूप में समझा जा सकता है कि वे चाहते थे कि पाठशाला में प्रवीष्ट होने से पूर्व ही सन्तानों को तथा प्रवेश के समय उनके आचार्यों को यह स्पष्ट विदित हो जाता कि अभिभावक अपनी सन्तानों को ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्य में से क्या बनाना चाहते हैं। दूसरे शब्दों में वे उन्हें किसी व्यवसाय उद्योग या जीविका उपार्जन के क्षेत्र में भेजना चाहते हैं। वर्तमान शिक्षा-पद्धति का एक बड़ा भारी दोष यह कि अभिभावक (माता-पिता) तथा आचार्य दोनों ही यह नहीं जानते कि वे बालक-बालिका को क्या बना रहे हैं और न बालक-बालिका यह जानते हैं कि वे क्या बनने जा रहे हैं। महर्षि द्वारा पाठशाला में 'प्रवेश से पूर्व उपययन की व्यवस्था का निर्देश शिक्षा की इस भयंकर कमी से मुक्त करने के लिए दिया गया था। यह नहीं समझना चाहिए कि महर्षि अन्तिम रूप से वर्ण-निर्धारण का कार्य अभिभावकों को दे रहे है।

षष्ठ प्रश्न : शिक्षणालय किस प्रकार के होने चाहिए ?

(क) शिक्षणालय ग्राम अथवा नगर से कितनी दूरी पर स्थित हों ?

इस विषय में महर्षि का स्पष्ट निर्देश है कि शिक्षणालय ग्राम अथवा नगर से कम से कम चार कोस (लगभग 13 कि. मी) दूर बिल्कुल एकान्त स्थान पर होने चाहिए। महर्षि ने ऐसा निर्देश केवल इसलिए किया है कि शिक्षणालयों के बालक

Scanned with CamScanner

और बालिकाएँ ग्रामीण अथवा नगरीय जीवन के कोलाहल तथा कुप्रभावों से दूर रहकर प्रकृति के प्रांगण में अपनी शिक्षा चालू रख सकें। आज के युग में ग्रामों तथा नगरों की सीमाओं में चलने वाले विद्यालयों के छात्रों और छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धियों तथा व्यवहारों को देखकर स्पष्टतया अनुभव होता है कि शिक्षणालय के स्थान के विषय में महर्षि का निर्देश एकदम सही है।

महर्षि का विचार था कि ब्रह्मचर्याश्रम काल में बालक और बालिकाएँ एक-दूसरे से बिल्कुल दूर रहें, इसीलिए उन्होंने इस प्रकार का निर्देश दिया है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक शिक्षा-काल में बालकों और बालिकाओं के बीच सम्पर्क के नितान्त अभाव को पसन्द नहीं करते। पर यह ध्यान रखना चाहिए कि आधुनिक मनोविज्ञानी ब्रह्मचर्य व्रत को भी कोई महत्व नहीं देते हैं। यदि बालकों और बालिकाओं से शिक्षाकाल में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कराना अभीष्ट है, तो उनके विद्यालयों को दूर ही रहना चाहिए।

(ख) दोनों प्रकारों के विद्यालयों के लिए स्टाफ व्यवस्था कैसी हो?

इस विषय में महर्षि ने लिखा है: जो अध्यापक अथवा अध्यापिकाएँ दुष्टाचारी हों, उनसे बालकों और बालिकाओं को शिक्षा न दिलाई जाए। बालकों के विद्यालयों में सब अध्यापक और कर्मचारी पुरुष तथा बालिकाओं के विद्यालयों में सब अध्यापक एवं कर्मचारी स्त्रियाँ ही हों। मेरे विचार से जो कुछ महर्षि ने लिखा है, उसका इतना ही अर्थ लगाना चाहिए कि ब्रह्मचर्याश्रम काल में बालकों और बालिकाओं को परस्पर

Scanned with CamScanner

सम्बन्ध में आने का अवसर नहीं देना चाहिए, इससे अधिक कुछ नहीं।

(ग) आचार्यों एवं आचार्याओं और बालक-बालिकाओं का पारस्परिक सम्बन्ध कैसा रहना चाहिए ?

आचार्यों और आचार्याओं को बालक और बालिकाओं को पुत्रों और पुत्रियों के समान मानकर व्यवहार करना चाहिए सभी बालकों और बालिकाओं को, चाहे वे राजकुमार हों या राजकुमारियाँ और चाहे धनिकों की सन्तान हों या निर्धन की, आसन, वस्त्र तथा खान-पान आदि सुविधाओं की दृष्टि से समानतापूर्ण व्यवहार मिलना चाहिए।

सभी बालक और बालिकाएँ समान रूप से तपस्यापूर्ण जीवन बिताते हुए और किसी प्रकार की (उच्चता या हीनता की) भावनाग्रन्थियों से मुक्त रहते हुए विद्याध्ययन करते रह सकें, इस दृष्टि से समानस्तरीय रहन-सहन का विधान उचित ही माना जायगा, विशेष रूप से वर्तमान लोकतन्त्रीय सन्दर्भ में।

(घ) बालक-बालिकाओं के साथ उनके माता-पिताओं का सम्बन्ध कैसा रहना चाहिए ?

विद्यार्थी काल में बालक बालिकाएँ अपने आचार्यों के ही सम्पर्क में रहे यह गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की विशेषता है जिसका वर्तमान रूप इंग्लैण्ड पब्लिक स्कूल है स्वामीजी के अनुसार ब्रह्मचर्य काल में माता-पिता का विशेष लाड प्यार भी अवांछनीय है। यह मान्यता आज के युग में कुछ कठोर प्रतीत होती है परन्तु यदि यह बात ध्यान में रखी जाए कि महर्षि शिक्षा पद्धति में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाकर एक नये समाज को जन्म देना चाहते थे, तो यह मान्यता बिलकुल

Scanned with CamScanner

उचित प्रतीत होने लगती है। नये समाज के निर्माण में वे ही युवक-युवतियाँ उपयोगी हो सकते हैं, जो पुराने समाज में प्रचलित वर्णगत, जातिगत तथा वर्गगत धारणाओं से बिलकुल मुक्त हों और जिन्होंने नवीन समाज के लिए उपयुक्त शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक योग्यताओं को साधना पूर्वक ग्रहण किया हो। ऐसे युवक-युवतियों का निर्माण करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उन्हें पुराने समाज के सम्पर्क में बिलकुल न आने दिया जाए।

(ङ) विद्यालयों में बालक-बालिकाओं के प्रवेश के समय की औपचारिकताएँ

विद्यालयों में प्रवेशार्थ अपनी सन्तानों को लाने से पूर्व उनके माता-पिता को कितनी तैयारी करके आना चाहिए यह ऊपर लिखा जा चुका है।

आधुनिक विद्यालयों में अनिवार्य सामान्य शिक्षा के पश्चात् बालक-बालिकाओं को भावी व्यवसाय चुनने में सहायता देने के लिए उनका अभिरुचि, अभिवृत्ति एवं पात्रता परीक्षण किया जाता है। ऐसे परीक्षणों के बिना माता-पिताओं के वर्णों से भिन्न नये वर्णों का निर्धारण हो ही नहीं सकता। यह बात महर्षि के मन में भी अवश्य होगी। इसीलिए विद्यालय में प्रवेश के समय पुनः उपनयन संस्कार को आवश्यक बताया है।

(च) शिक्षणालयों में बालक-बालिकाओं द्वारा अवश्य पालनीय नियम क्या-क्या हों?

ब्रह्मचर्य

महर्षि ने इस विषय में निम्नलिखित बातें लिखी हैं :—

Scanned with CamScanner

(1) प्रत्येक बालक कम से कम पच्चीसवें वर्ष पर्यन्त और प्रत्येक बालिका कम से कम सोलह वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्यव्रत पालन करे।

(2) जब तक वे ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी रहें, तब तक स्त्री या पुरुष का दर्शन, स्पर्शन, एकान्त सेवन, भाषण, विषय कथा, परस्पर क्रीड़ा, विषय का ध्यान और संग, इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहें।

(3) ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी आचरण में निम्नलिखित बातों का भी ध्यान रखें :—

ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी मद्य, मांस, मसाला, तीखे रस, स्त्री पुरुष का संग, सब प्रकारों की खटाई, प्राणियों की हिंसा, अंगों का मर्दन, आँखों में अंजन, जूते एवं छत्र का धारण, काम, क्रोध, लोभ, नाचना, गाना-बजाना, जुआ, गप्पबाजी, परनिन्दा, असत्य, पुरुषों / स्त्रियों को ताकना तथा आक्रमण और दूसरों को हानि पहुँचाना आदि कुकर्मों से बचे रहें। वे सदा अकेले सोयें, शुक्र को न गिरावें। जो कामवश अपने शुक्र को गिराता है, वह अपने व्रत से पतित हो जाता है।

(4) प्रत्येक ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी यमों और नियमों का पालन करते हुए योगाभ्यास करते रहें (जिसमें काम-ऊर्जा का सही ढंग से विनियोग होता रह सके)।

(5) प्रत्येक ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी नियमित रूप से ब्रह्मयज्ञ तथा देवयज्ञ करते रहें।

ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियाँ अपने गुरुजनों के अनुशासन में रहते हुए विद्याध्ययन में संलग्न रहें।

महर्षि दयानन्द की दृष्टि में विद्याध्ययन का अर्थ केवल सूचनाओं का संकलन नहीं था। वे विद्या में ब्रह्मचर्य व्रत,

Scanned with CamScanner

विनय (स्पृहणीय गुण, कर्म एवं स्वभाव) तथा वेदादि शास्त्र ज्ञान तीनों को समाविष्ट मानते थे। इसी कारण विद्याध्ययन काल में उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत, विनय और अध्ययन के विरोधी समस्त व्यवहारों के परित्याज्य और उनके संपोषक व्यवहारों के आचरण को अवश्य कारणीय माना था। ऊपर से देखने में उनके द्वारा प्रतिपादित वर्जनाएँ तथा कर्तव्य बहुत कठोर प्रतीत होते हैं पर इतना निश्चित है कि यदि आचरण में उनका ध्यान रखा जाए, तो उनकी शिक्षा-पद्धति से स्नातक पाषाण की तरह दृढ़ और परशु की भाँति तेजस्वी बनकर निकलेगा।

(छ) बालक-बालिकाओं की देख भाल कैसे चले ?

बालकों और बालिकाओं को पूरी तरह और प्रत्येक समय अपने गुरुओं की देख रेख और पथ प्रदर्शन में रहना चाहिए। यदि विद्या का अर्थ केवल ज्ञान संग्रह लिया जाए, तो इस प्रकार की व्यवस्था की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि व्रत पालन तथा शील को विद्या का अभिन्न अंग माना जाए, तो निरन्तर पथ प्रदर्शन एवं देख भाल की व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे एकान्त में भी किसी प्रकार की त्रुटि की सम्भावना न रहे।

(ज) शिक्षा अनिवार्य (Compulsory) एवं सार्वभौम (Univarsal) रहे या ऐच्छिक (Optional) एवं वर्गनिष्ठ (Class-bassed) ?

महर्षि शिक्षा को अनिवार्य एवं सार्वभौम चाहते थे। उन्होंने लिखा है :— (1) "ऐसा राजनियम और जाति नियम होना चाहिए कि पाँचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे अपने लड़कों और लड़कियों को अपने घर में न रख सकें। पाठशाला में अवश्य भेज देवें। जो न भेजे, वह दण्डनीय हो।" (2) "और जब सब

Scanned with CamScanner

वर्णों में विद्या सुशिक्षा होती है, तब कोई भी पाखण्ड रूप अधर्मयुक्त मिथ्या व्यवहार को नहीं चला सकता। .... इसलिए सब वर्णों के स्त्री-पुरुषों में विद्या और धर्म का प्रचार अवश्य होना चाहिए।"

स्पष्ट है कि महर्षि अनिवार्य एव सार्वभौम शिक्षा के पक्षपाती थे। वे लोकतन्त्र (भीड़ तन्त्र नहीं) के पक्षपाती थे अतः उनके लिए ऐसी शिक्षा का समर्थक होना बिलकुल स्वाभाविक ही था। परन्तु एक और दृष्टि से भी उनके लिए अनिवार्य एवं सार्वभौम शिक्षा का समर्थन होना ही उचित था। वे प्रचलित जाति व्यवस्था को गुण कर्म स्वाभावाधारित वर्ण व्यवस्था में बदलना चाहते थे। यह क्रान्तिकारी परिवर्तन तभी सम्भव था जब सभी बालक-बालिकाएँ शिक्षा-प्रक्रिया में से होकर गुजरते और शिक्षा की समाप्ति पर शिक्षा संस्था में से नया वर्ण लेकर निकल सकते।

सप्तम प्रश्न : शिक्षणालयों में पाठ्यक्रम क्या हो ?

महर्षि ने पाठ्यक्रम का जो रूप प्रस्तुत किया है, उसमें व्याकरण, निरुक्त, छन्द शास्त्र, दर्शन, साहित्य, वेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गायन, शिल्प, गणित, ज्योतिष, भूगोल, खगोल आदि विज्ञान सब आवश्यक विषयों का समावेश है।

फलतः यह उचित प्रतीत होता है कि अध्येताओं की पात्रता, रुचियों, परिस्थितियों तथा विशेष लक्ष्यों को दृष्टि में रखते हुए महर्षि द्वारा निर्दिष्ट सिद्धान्तों के आधार पर विभिन्न प्रकार के सामान्य एवं विशिष्ट (graded) अनुस्तारित पाठ्यक्रम तैयार करके लागू किये जाएँ। समाज के विभिन्न वर्गों तथा व्यक्तियों के लिए एक ही प्रकार के समानावधिक पाठ्यक्रम की कल्पना निश्चय ही उनके मन में नहीं रही होगी।

Scanned with CamScanner

अष्टम प्रश्न : पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने के लिए विषय-वस्तु की उपादेयता की जाँच के लिए कसौटियाँ क्या हों ?

यह प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है। कसौटियों के अभाव में मध्यकाल में बहुत कूड़ा-करकट पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाता रहा, जिससे बालक-बालिकाओं के हृदयों पर कुसंस्कार पड़ते रहे और वे अन्धविश्वासों के शिकार होते रहे। आजकल के शिक्षा शास्त्री भी पाठ्यक्रम में किसी विषयवस्तु को सम्मिलित करने से पहले उन्हें अनेक कसौटियों पर कस लेते हैं जिससे कोई असत्य, अप्रामाणिक, अभद्र एवं अनुपयुक्त विषयवस्तु पाठ्यक्रम में न आ जाए। महर्षि ने इस विषय में निम्नलिखित कसौटियों का परिगणन किया है :

1. ईश्वर के गुणों, कर्मों और स्वभावों में अनुकूलता।
2. वेदों से अनुकूलता।
3. सृष्टिक्रम से अनुकूलता।
4. आप्त अर्थात् धार्मिक, सत्यवादी एवं निष्कपटी विद्वानों के उपदेश से अनुकूलता।
5. अपनी आत्मा से अनुकूलता (आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्)
6. प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सिद्धता।

पाठ्यक्रम की अंगभूत विषयवस्तुओं को इन कसौटियों पर कस लेने पर कोई भी असत्य, अप्रामाणिक, अभद्र एवं अनुपयुक्त वस्तु पाठ्यक्रम में आ ही नहीं सकती। इन कसौटियों पर विषयवस्तु को कसवाने के बाद यदि अनुस्तरग (grade) के आधुनिक कसौटियों का भी उपयोग कर लिया जाए, जो विस्तृत पाठ्यक्रम बनेगा, वह निश्चय ही एक आदर्श पाठ्यक्रम होगा।

Scanned with CamScanner

नवम प्रश्न : पाठन विधि का स्वरूप कैसा हो ?

अध्यापन विधियों को मोटे रूप में आगमन विधि (Inductive Method), निगमन विधि (Deductive Method) तथा आगमन - निगम विधि (Inductive - Deductive Method) इन तीन वर्गों में रखा जा सकता है। अपने देश में बहुत प्राचीनकाल से निगमन विधि का प्रचलन चला आ रहा है। महर्षि ने व्याकरणाध्यापन के सन्दर्भ में अनेक उदाहरण देकर इसी विधि का निर्देशन किया है। सभी शिक्षा शास्त्री इस बात पर सहमत हैं कि सुबुद्ध छात्रों के लिए समय और श्रम बचाने की दृष्टि से यह विधि सर्वोत्तम होती है। पर कम विकसित बुद्धि वाले छात्रों - छात्राओं को आगमन-विधि से अध्यापन करना उक्त निदर्शन के विरुद्ध नहीं है क्योंकि अन्ततोगत्वा छात्रों/छात्राओं की ग्रहण क्षमता पर तो विचार करना ही पड़ता है। पर जिन कौशलात्मक विषयों में छात्रों-छात्राओं से कुछ 'करना' (Doing) अभीष्ट होता है, वहाँ महर्षि ने 'देखो-सुनो करो' विधि का संकेत दिया है। ऐसे विषयों में अन्य कोई मार्ग भी नहीं होता।

दशम प्रश्न : शिक्षा के प्रति राज्य एवं समाज के उत्तरदायित्व का स्वरूप क्या हो ?

महर्षि ने इस प्रश्न पर उस समय विचार किया था, जब इंगलैण्ड तथा यूरोप में भी सम्पूर्ण जनता को शिक्षित करने का उत्तरदायित्व राज्य अथवा समाज का है, यह सिन्द्धान्त स्वीकार नहीं किया गया था। महर्षि ने इसके विषय में लिखा है कि इसमें राज्य नियम और जाति नियम होना चाहिए कि पाँचवें अथवा आठवें वर्ष से अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सकें। इस लेख का अर्थ यह हुआ कि यह राज्य अथवा

Scanned with CamScanner

समाज का उत्तरदायित्व है कि वह सम्पूर्ण जनता के समस्त बालकों और बालिकाओं के लिए ऊँच-नीच की भावना से पूर्णतया मुक्त होकर गुरुकुल निवास की सुविधा के साथ एकदम निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करे। ऐसी शिक्षा तो महर्षि के काल में तो अचिन्तनीय थी ही, आज भी जब कि मानवीय समानता के इतने नारे लग रहे हों, तब भी बहुत अधिक क्रान्तिकारी लगती है। स्पष्ट है कि महर्षि शिक्षा के मामले में अपने समय से बहुत आगे थे और आज भी वे पिछड़े हुए नहीं माने जा सकते।

कतिपय तुलनात्मक निष्कर्ष

यदि महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा-पद्धति तथा आधुनिक शिक्षा पद्धति पर तुलनात्मक दृष्टि से समग्रतः विचार किया जाए, तो निम्नलिखित निष्कर्ष स्वयमेव सामने आ जाते हैं :

1. महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा ब्रह्मचर्य व्रत को अत्यधिक महत्त्व देती है जब कि आधुनिक शिक्षा उसको कोई महत्त्व नहीं देती।

2. महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा व्रत-शील केन्द्रित है, जब कि आधुनिक शिक्षा केवल सूचना केन्द्रित है।

3. महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा आचार्यों-आचार्याओं तथा छात्रों-छात्राओं के बीच आत्मीयता पूर्ण पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित करती है जबकि अधुनिक शिक्षा उनके बीच तनावपूर्ण व्यावसायिक सम्बन्ध स्थापित करती है।

4. महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा में माता-पिता की निर्धनता कोई बाधा नहीं उत्पन्न करती जबकि आधुनिक शिक्षा में गरीबी अभिशाप है।

Scanned with CamScanner

5. महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा जातिवाद मुक्त एवं स्वयंवर समर्थक समाज की आधारशिला रखती है जबकि आधुनिक शिक्षा सामाजिक पुनर्निर्माण के विषय में युवकों और युवतियों को दिशा विहीन छोड़ देती है।

6. महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा आदर्शवाद प्रकृतिवाद तथा यथार्थवाद के समन्वय पर आधारित है, जब कि आधुनिक शिक्षा घोषणाओं में यथार्थवादी पर व्यवहार में घोर अयथार्थवादी है।

कुछ अन्य प्रश्न

महर्षि ने तृतीय समुल्लास में अपने शिक्षा विषयक विचारों को स्पष्ट करते हुए आनुषांगिक रूप से कुछ अन्य प्रश्नों के उत्तर भी दिये हैं। उनसे भी परिचय प्राप्त कर लेना उचित एवं लाभदायक है। इस कारण उनकी भी क्रमशः चर्चा की जा रही है।

देव यज्ञ की उपयोगिता

महर्षि ने ब्रह्मचारी के लिए प्रतिदिन ब्रह्मयज्ञ तथा देवयज्ञ करना अवश्यक बताया है। महर्षि ने बताया कि अग्निहोत्र करने से उससे उत्पन्न सुगन्धित वायु जल तथा वायु में विद्यमान प्रदूषणों को नष्ट करके स्वास्थ्यकारक सुगन्ध का विस्तार करती है। उन्होंने यह भी बताया कि अग्नि-संयोग से सुगन्धित द्रव्यों में जो विश्लेषण एवं रोग नाशक शक्ति उत्पन्न हो जाती है, वह अग्नि-संयोग रहित इत्र आदि पदार्थों में नहीं होती। प्रत्येक व्यक्ति स्वानुभव से भी उक्त कथन की सत्यता का अनुभव कर सकता है। अग्निहोत्र करते समय मन्त्रों का उच्चारण करने से वेदों का स्वाध्याय होता चलता है।

Scanned with CamScanner

प्रमाणों की संख्या

पाठ्यक्रम में समावेशनीय विषय वस्तु की परीक्षा प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों के आधार पर की जानी चाहिए, ऐसा महर्षि ने लिखा है।

वेदाध्ययन का अधिकार

महर्षि ने जो पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया है, उसमें वेदाध्ययन को भी सम्मिलित किया है और प्रत्येक बालक-बालिका के लिए उसको आवश्यक बताया है। मध्यकालीन परम्परा में स्त्रियों तथा शूद्रों को वेदाध्ययन के अधिकार से वंचित रखा गया था। इसी दृष्टि से यह प्रश्न उठाया गया है कि वेदाध्ययन का अधिकार किन-किन को है। महर्षि ने इस प्रश्न का उत्तर युक्ति और प्रमाण दोनों से यह दिया है कि वेदाध्ययन का अधिकार मनुष्य मात्र को है। जिस प्रकार परमेश्वर रचित आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य एवं चन्द्र आदि पदार्थ मनुष्य मात्र के लिए हैं, उसी प्रकार परमेश्वर प्रदत्त ज्ञान (वेद) भी सबके लिए सब पुरुषों एव स्त्रियों के लिए है। प्रत्येक स्त्री एवं पुरुष को चाहे वह किसी वर्ण का हो, वेद पढ़ने का पूरा-पूरा अधिकार है। अपनी मान्यता के समर्थन में उन्होंने यथेमां वाचं कल्याणीम् (यजु 26।2) यह वेद मन्त्र प्रस्तुत किया।

श्री सत्यव्रत सामश्रमी आदि पौराणिक विद्वानों ने भी इस मन्त्र का महर्षि कृत अर्थ मानकर शूद्रों का भी वेदाध्ययनाधिकार स्वीकार किया है।[1] महर्षि के इसी उद्घोष के कारण

---

[1] शूद्रस्य वेदाधिकारे साक्षाद् वेदवचनमपि प्रदर्शितं-स्वामि-दयानन्देन ऐतरेयालोचन, पृ. 17

Scanned with CamScanner

अब विश्व के सभी विश्व विद्यालयों में वेदों का अध्ययन होने लगा है और सैकड़ों स्त्रियाँ तथाकथित शूद्र वेदों का अध्ययन कर रहे हैं। आज कहीं किसी पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है।

अपठनीय ग्रन्थ

पाठ्यक्रम के प्रसंग में महर्षि ने पठनीय ग्रन्थों की तालिका तो दी है, पर साथ ही न पढ़ने योग्य ग्रन्थों के नाम भी दिये हैं। उन ग्रन्थों के नामों से महर्षि की भावना को ठीक-ठीक समझा जा सकता है।

प्रश्न उठता है कि इन सब ग्रन्थों को महर्षि ने त्याज्य क्यों ठहराया। उनकी दृष्टि में इन ग्रन्थों की त्याज्यता के निम्नलिखित कारण थे:

1. ये सभी ग्रन्थ वेदतत्वानभिज्ञ लौकिक मनुष्यों ने बनाये हैं। इनके अध्ययन से अवतारवाद, मूर्ति पूजा आदि बहुत सी असत्य और अन्ध-विश्वास पूर्ण मान्यताओं में आस्था उत्पन्न होती है।

2. इन ग्रन्थों के अध्ययन में समय तो बहुत लगता है पर ज्ञानलाभ बहुत कम होता है। इनका अध्येता वेदों तक तो कभी पहुँच ही नहीं सकता, जिनको मनु आदि धर्म शास्त्र अखिल धर्म का मूल बताते हैं।

महर्षि ने इन ग्रन्थों को छोड़कर आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन का ही परामर्श दिया है, क्योंकि उनके अध्ययन से कम समय में ही बहुत ज्ञान लाभ होता है।

Scanned with CamScanner

षड् दर्शनों की अविरुद्धता

पाठ्यक्रम से ही सम्बद्ध एक प्रश्न है, षड् दर्शनों की परस्पर अविरुद्धता का। प्रश्न का सन्दर्भ यह है: महर्षि न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त इन छह दर्शनों को वैदिक दर्शन मानते हैं और उन्हें परस्पर अविरुद्ध घोषित करते हैं। मध्यकालीन परम्परा इनको वैदिक दर्शन मानती हुई भी परस्पर विरोधी सिद्धान्तों का प्रतिपादक मानती है। महर्षि को दृष्टि में यह स्थिति असंगत है क्योंकि यदि वे वदिक तो उन्हें परस्पर विरोधी नहीं होना चाहिए और यदि वे परस्पर विरोधी हैं, तो उन्हें वैदिक नहीं होना चाहिए। इस दृष्टि भेद के आधार पर यह प्रश्न उठता है कि पाठ्यक्रम में षड् दर्शनों का किस दृष्टि से रखा जाना चाहिए। इस प्रश्न का महर्षि का उत्तर स्पष्टतया यह है कि षड्दर्शनों की पाठ्यमक्र में परस्पर अ वरुद्ध समझ कर ही रखा जाना चाहिए।

महर्षि चूँकि उक्त दर्शनों में परस्पर विरोध नहीं मानते अत: उन्होंने यह भी दिखाया है कि वे किस प्रकार परस्पर विरोधी नहीं हैं। वे लिखते हैं: [1] जैसे घड़े के बनाने में कर्म, समय, मिट्टी, विचार, सयोग वियोग आदि का पुरुषार्थ, प्रकृति के गुण और कुम्हार आदि कारण हैं, वैसे ही सृष्टि का जो मूल कारण कर्म है—उसकी व्याख्या मीमांसा में, समय की व्याख्या वैशेषिक में, उपादान कारण की व्याख्या-न्याय में, पुरुषार्थ की व्याख्या योग में, तत्वों के अनुक्रम से परिणाम की व्याख्या सांख्य में और निमित्त कारण जो परमेश्वर है, उनकी व्याख्या वेदान्त शास्त्र में है। इससे उनमें कुछ भी विरोध नहीं है।

[1] तृतीय समुल्लास, पृष्ठ 107, पंक्ति 19–25।

Scanned with CamScanner

इस प्रकार छहों दर्शनों को अविरुद्ध ही नहीं, एक दूसरे का पूरक मानकर महर्षि ने इन्हें अपने पाठ्यक्रम में स्थान दिया हैं।

षड्दर्शनों की अविरुद्धता का विचार महर्षि की दर्शन के क्षेत्र में अपनी स्वतन्त्र एवं अद्भुत देन है। उनका दृष्टिकोण यह है कि यदि एक ही विषय में अनेक व्यक्ति परस्पर विरुद्ध कथन करें, तो उसको विरोध कहा जाएगा परन्तु यदि एक ही विषय के विभिन्न अवयवों के विषय में अनेक व्यक्ति अवयवश: भिन्न प्रकार की बात कहें तो इसे विरोध नहीं कहा जा सकता। उनके विचार से विभिन्न दर्शनों में सृष्टि रचना के विभिन्न अवयवों का विस्तृत विवेचन तथा व्याख्यान किया है अतः उनको परस्पर विरोधी नहीं माना जाना चाहिए। इस बात को पूर्ववर्ती अनुच्छेद में दिये हुए उदाहरण से स्पष्टतया समझा जा सकता है।

समस्त वर्णों में शिक्षा प्रसार क्यों ?

ऊपर के अनुच्छेदों में यह बात स्पष्टतया कही गई है कि महर्षि दयानन्द अनिवार्य, सार्वभौम एवं निःशुल्क शिक्षा के समर्थक थे।

स्वामी जी का स्पष्ट मत था कि स्त्री और पुरुष दोनों के शिक्षित हुए बिना न परिवार में न समाज में शान्ति और सन्तुलन रह सकता है।

ऊपर दिये गये उदाहरणों से स्पष्ट है कि महर्षि सभी वर्णों के स्त्रियों तथा पुरुषों को सुशिक्षित करना चाहते थे। उनका दृष्टिकोण समाज के कल्याण की दृष्टि से बिल्कुल उचित था। प्रत्येक व्यक्ति में निम्न-लिखित योग्यताएँ अवश्य होनी चाहिए : (।) स्वधर्म को सही ढंग से समझने तथा पालन की योग्यता। (2) दूसरों द्वारा कुपथगामी बनाने के प्रयत्नों से

Scanned with CamScanner

बचने की योग्यता। (3) समाज को कुपथ पर ले जाने वाले स्वार्थियों के साथ सघर्ष करने की योग्यता। ये योग्यताएँ शिक्षा से ही प्राप्त हो सकतीं और यदि पूरे समाज को कुपथ-गामिता से बचाना है तो ये योग्यताएं समाज के प्रत्येक घटक में, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, अवश्य होनी चाहिए। अपने देश का इतिहास साक्षी है कि मध्यकाल में ब्राह्मण वर्ण के पुरुषों द्वारा विद्या तथा धर्म पर एकाधिकार कर लेने तथा अन्य वर्णों के स्त्री-पुरुषों के विद्या शून्य हो जाने से पूरे देश को अन्ध-विश्वासों, लूटपाट तथा पराधीनता के अभिशाप भोगने पड़े। सभी वर्णों के स्त्री-पुरुषों के बीच सामाजिक प्रतिसहयोग बना रहे, इसके लिए भी सार्वजनिक शिक्षा नितान्त आवश्यक है।

उपसंहार

सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास का प्रतिपाद्य विषय मुख्यतः शिक्षा है। इसमें शिक्षा के विभिन्न पक्षों पर महर्षि ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। महर्षि 'शिक्षा--शिक्षा के लिए' इस विचार को न मानकर शिक्षा लोक-कल्याण के लिए इस विचार को मानते थे। जिस प्रकार की वर्णाश्रमात्मक समाज रचना के पक्षधर थे, उसके लिए जैसी शिक्षा वे उचित समझते थे, वैसी शिक्षा की रूप-रेखा उन्होंने इस समुल्लास में प्रस्तुत कर दी है।

महर्षि का बहुत से लोग मात्र सुधारक मानते हैं। धर्म शब्द का प्रयोग भी वे व्यापक अर्थ में न करके संकुचित अर्थ में करते हैं। तृतीय समुल्लास से ऐसे लोगों का भ्रम दूर हो जाना चाहिए। महर्षि ने इस समुल्लास में, शिक्षा के विषय में जो कुछ लिखा है, उसे पढ़ कर उनका शिक्षाशास्त्री रूप निखर कर सामने आता है। शिक्षा के प्रत्येक अंग पर उन्होंने

Scanned with CamScanner

राष्ट्रकल्याण तथा सामाजिक पुनर्निर्माण को दृष्टि में रख कर प्रकाश डाला है।

महर्षि दयानन्द भारत में शिक्षा क्षेत्र के भी अग्रदूत थे। उनके अनुगामियों ने शिक्षा के क्षेत्र में जो कार्य किया वह कई दृष्टियों से अद्भुत है। परन्तु यह खेद की बात है कि आज भी शिक्षा में से महर्षि का प्रिय एक तत्व--ब्रह्मचर्य व्रत बिलकुल गायब हो गया है। इस एक कमी के कारण नई पीढ़ी का अधिकांश भाग शील एवं तेजस्विता से रहित होता जा रहा है और सम्पूर्ण समाज अपने सांस्कृतिक मूल्यों को खोता जा रहा है। आज आवश्यकता इस बात की है कि महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा तत्वों को आज की शिक्षा में समाविष्ट किया जाए। यदि यह सम्भव न हो, तो उन तत्वों को आधुनिक-शिक्षा तत्वों के साथ वैकल्पिक रखकर प्रयोग का विषय बनाया जाए, जिससे ज्ञात हो सके कि दोनों प्रणालियों (Streavrs) में से कौन अधिक लोक कल्याणकारी है। महर्षि के अनुगामी, जिन शिक्षा संस्थाओं के संचालक हैं, उनका इस विषय में विशेष उत्तरदायित्व है।

यह हो सके या न हो सके, यदि वेदों को उसके सम्पूर्ण महत्व के साथ आज के विश्व जीवन में प्रतिष्ठित रखना है, तो उनकी विज्ञान संगत व्याख्या प्रस्तुत करनी होगी और वैसी व्याख्या प्रस्तुत करने में समर्थ विद्वान् उसी शिक्षा पद्धति से उत्पन्न हो सकते हैं, जिसको रूप रेखा महर्षि ने तृतीय समुल्लास में प्रस्तुत की है। उस रूप रेखा का विस्तृत विवरण बनाकर विद्वान् आगे बढ़ सकते हैं, इस विषय में 'इदमित्थमेव' भाव की आवश्यकता नहीं है।

Scanned with CamScanner

आर्यसमाज अजमेर द्वारा प्रकाशित साहित्य

शिक्षाविद प्रो. दत्तात्रेय आर्य द्वारा लिखित पुस्तकें

1. देश, धर्म और हिन्दू समाज को आर्यसमाज की देन—मूल्य 0.50 पैसे
2. हमारी राष्ट्रीयता का आधार—मूल्य रु. 1.00
3. विद्यार्थियों के लिए आचार संहिता—मूल्य रु. 1.00
4. दी आर्यसमाज हिन्दू विदाउट हिन्दुइज्म (अंग्रेजी)—विशेष रियायती दर रु. 75.00
5. आर्यसमाज हिन्दू धर्म का सम्प्रदाय नहीं—मूल्य 50.00 रु.
6. मेरी तीसरी विदेश यात्रा—रु. 6 00
7. द आर्यसमाज (अंग्रेजी)—रु. 2.00

दयानन्द शोधपीठ के प्रकाशन

1. दयानन्द कथा संग्रह—मूल्य रु. 3.00
2. महर्षि दयानन्द : पत्रों के दर्पण में—मूल्य रु. 50.00
3. सार्वभौम वैदिक धर्म—मूल्य रु. 250

अन्य प्रकाशन

1. धर्म शिक्षा (भाग 1 से 11 तक) पूरे सैट का मूल्य रु. 60.00
2. परिचय निर्देशिका (समस्त देश-विदेश की आर्य शिक्षण संस्थाओं का परिचय)—मूल्य रु. 12.00
3. आर्यसमाज (हिन्दी)—मूल्य सजिल्द रु. 20.00 अजिल्द रु. 16.00
   ले. लाला लाजपतराय
4. सांस्कृतिक कार्यक्रम पथ दर्शिका—मूल्य रु. 30.00

Scanned with CamScanner

ओ३म्

आर्यसमाज के नियम

1. सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदिमूल परमेश्वर है।

2. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायाकारी, दयालु अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

3. वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

4. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करना चाहिये।

6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

7. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

10. सब मनुष्यों को समाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में स्वतन्त्र रहें।

Scanned with CamScanner